तस्मात्=अतएव; **अज्ञानसंभूतम्**=अज्ञान से उत्पन्न हुए; **हृत्स्थम्**=हृदय में स्थित; **ज्ञान**=तत्त्वबोध रूप; **असिना**=शस्त्र से; **आत्मनः**=अपने; **छित्त्वा**=काट कर; **एनम्**=इस; **संशयम्**=संशय को; **योगम्**=योग में; **आतिष्ठ**=स्थित हुआ; **उत्तिष्ठ**=युद्ध के लिए खड़ा हो; **भारत**=हे भरतवंशी अर्जुन।

अनुवाद

अतएव हे भरतवंशी अर्जुन! हृदय में अज्ञान से उत्पन्न संशय का ज्ञानरूप शस्त्र से छेदन कर डाल और फिर योग में स्थित होकर युद्ध के लिए खड़ा हो जा।।४२।।

तात्पर्य

इस अध्याय में उपदिष्ट योगमार्ग 'सनातनयोग' अर्थात् 'जीवात्मा की नित्य क्रिया' कहलाता है। इस योग में दो प्रकार के यज्ञकर्म किए जाते हैं—स्वत्व-त्यागमय द्रव्ययज्ञ एवं शुद्ध आत्मज्ञानयज्ञ। यदि द्रव्ययज्ञ को भगवत्प्राप्ति के उद्देश्य से नहीं किया जाय तो वह प्राकृत यज्ञ बन कर रह जायगा। परन्तु यदि इन्हीं यज्ञों को आध्यात्मिक लक्ष्य से अथवा भक्तिभाव से किया जाता है तो ये सर्वांगीण पूर्ण हो जाते हैं। आध्यात्मिक क्रियाओं की भी दो कोटियाँ हैं—स्वरूप-बोध एवं भगवान् के तत्त्व का बोध। गीता के यथार्थ पथ का अनुगामी ज्ञान के इन दोनों वर्गों को बड़ी सुगमता से आत्मसात् कर लेता है। जीवात्मा श्रीभगवान् का भिन्न-अंश है—इस पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति में उसे कुछ भी कठिनाई नहीं होती। यह ज्ञान परम कल्याणकारी है, क्योंकि इसके ज्ञाता को श्रीभगवान् की दिव्य लीला के तत्त्व का सहज में बोध हो जाता है। अध्याय के आदि में श्रीभगवान् ने अपनी अलौकिक अतिमानवीय लीला का वर्णन किया है। जो गीतोपदेश को नहीं समझ सकता, वह अश्रद्धालु है और श्रीभगवान् से प्राप्त आंशिक स्वतन्त्रता का दुरुपयोग कर रहा है। जो मनुष्य इस शिक्षा की प्राप्ति के बाद भी श्रीभगवान् के सच्चिदानन्दमय यथार्थ स्वरूप को नहीं समझ सकता, वह निस्सन्देह प्रथम श्रेणी का मूढ़ है। कृष्णभावनामृत के सिद्धान्तों को शनैः-शनैः स्वीकार करने से ही अज्ञान का अन्त हो सकता है। कृष्णभावनामृत देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, ब्रह्मचर्ययज्ञ, गृहस्थपालनरूप यज्ञ, इन्द्रिय-निग्रहयज्ञ, योगाभ्यासयज्ञ, तपयज्ञ, द्रव्ययज्ञ, स्वाध्याययज्ञ तथा वर्णाश्रम धर्म के पालन आदि के द्वारा जागृत होती है। 'यज्ञ' कहलाने वाली ये सभी क्रियाएँ नियत कर्मों पर आधारित हैं। परन्तु इन सब का सार स्वरूप-साक्षात्कार है। उसका जिज्ञासु ही भगवद्गीता का यथार्थ शिष्य है; पर श्रीकृष्ण के प्रामाण्य में संशय करने वाले का अवश्य पतन हो जाता है। अतः भगवद्गीता अथवा अन्य शास्त्रों का अध्ययन यथार्थ सद्गुरु के आश्रय में सेवामय प्रपन्नभाव से ही करना योग्य है। चिरन्तनकाल से चली आ रही शिष्यपरम्परा के पद पर आसीन गुरु ही प्रामाणिक हैं। वे श्रीभगवान् की उस शिक्षा से लेशमात्र भी च्युत नहीं होते, जिसका उपदेश उन्होंने करोड़ों वर्ष पूर्व सूर्यदेव को किया था। सूर्य से ही 'गीतोपदेश' इस धराधाम पर अवतरित हुआ। अतएव भगवद्गीता के उसी पथ